# ब्रह्मलीला की झलक

## श्रीजी द्वारा जागनी का प्रवाह • दीपबंदर से पन्ना जी तक

www.shriprannathjivani.com

कृपया हमारे यूट्यूब चैनल **“Shri Prannath Ji Vani”** को अवश्य सब्सक्राइब करें।

**श्री प्राणनाथ जी वाणी**

|| प्रेम खोल देवे सब द्वार ||

# श्री प्राणनाथ जी वाणी सेवा परिवार

धाम धनी जी की असीम मेहर से तथा **पूज्य सतगुरु श्री राजन स्वामी जी** (**श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ**) द्वारा रचित साहित्य और उनकी अनुपम, हृदयस्पर्शी चर्चाओं के आलोक से प्रेरित होकर **"ब्रह्मलीला की झलक – श्रीजी द्वारा जागनी का प्रवाह, दीपबंदर से पन्ना जी तक"** ग्रंथ की यह विनम्र प्रस्तुति प्रेम, श्रद्धा और सेवा-भाव के साथ संकलित की गई है।

लेखन, टाइपिंग व प्रूफरीडिंग सेवा - **श्री प्राणनाथ जी वाणी परिवार**
सभी निस्वार्थ, अथक व निरंतर सेवाभावी सुंदरसाथ जी के चरणों में
**कोटि कोटि प्रेम प्रणाम जी।**

**क्यों कहूं चरन की बुजरकियां, इत नाहीं ठौर बोलन।**
**ए पकड़ सरूप पूरा देत हैं, मेरे जीव के एही जीवन।।**

## कॉपीराइट

**कॉपीराइट © 2026 श्री प्राणनाथ जी वाणी**
सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पुस्तक के किसी भी अंश की छपाई, पुनरुत्पादन या किसी अन्य रूप में उपयोग बिना अनुमति के निषिद्ध है।

# अनुभूमिका

**प्यारे सुंदरसाथ जी!**

सच्चिदानंद परब्रह्म की असीम मेहर-दृष्टि से **"ब्रह्मलीला की झलक - श्रीजी और उनके सुंदरसाथ की अखंड यात्रा"** ग्रंथ को आप सभी के समक्ष प्रस्तुत करने का यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। यह केवल एक लेखन का कार्य नहीं, बल्कि एक विनम्र सेवा का प्रयास है।

सच तो यह है कि मुझ जैसे अल्पज्ञ को शब्दों का विशेष ज्ञान नहीं है। इस विषय की गहराई और महिमा को व्यक्त करना मेरे लिए अत्यंत कठिन था। किंतु मेरे **पूज्य सतगुरु श्री राजन स्वामी जी** द्वारा लिखित बीतक के टीका व दोपहर का सूरज के अध्ययन तथा **श्री प्राणनाथ जी वाणी ज़ूम** में मेरी प्रिय **धाम की सखी (ऑस्ट्रेलिया)** द्वारा की गई बीतक की मधुर और प्रेरणादायी चर्चाओं ने मेरे हृदय में यह प्रेरणा जागृत की कि इस दिव्य यात्रा को सरल शब्दों में संजोने का प्रयास किया जाए।

इस ग्रंथ में संक्षिप्त रूप से यह वर्णन करने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार श्रीजी ने **विक्रम संवत 1712 से 1722** तक माया से युद्ध किया और **विक्रम संवत 1722** में पूर्णतः माया के कार्यों से निवृत्त होकर विभिन्न स्थानों पर कब, कहाँ और कितने समय तक विराजमान रहे। विशेष रूप से दीपबंदर से लेकर पन्ना जी तक की जागनी यात्रा को सहज और सरल रूप में प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है, जिससे सुंदरसाथ जी इन प्रसंगों को सहजता से समझ सकें।

जिस प्रकार श्रीजी ने अठारह वर्षों **(विक्रम संवत 1722 से 1740)** तक सुंदरसाथ जी की जागनी करते हुए पन्ना जी तक की दिव्य यात्रा पूर्ण की, उसी प्रकार आज हमारे पूज्य सतगुरु श्री राजन स्वामी जी भी उसी जागनी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए नगर-नगर और ग्राम-ग्राम जाकर सुंदरसाथ जी को जागृत कर रहे हैं। इसलिए हमारा भी यह कर्तव्य बनता है कि यदि हम उनके साथ प्रत्यक्ष रूप से नहीं चल सकते, तो कम से कम उनके पीछे-पीछे चलकर मेहर की सेना में सम्मिलित होने का सौभाग्य अवश्य प्राप्त करें।

आशा है कि यह छोटा सा प्रयास आपको रुचिकर लगेगा और बीतक के इन प्रसंगों को सरल रूप में समझने में सहायक सिद्ध होगा।

अंत में, सभी सुंदरसाथ जी से विनम्र निवेदन है कि यदि इस प्रयास में कहीं कोई त्रुटि या भूल रह गई हो, तो कृपया उसे क्षमा दृष्टि से देखें और अपने अमूल्य सुझावों एवं आशीर्वचनों से हमें अवगत कराने की कृपा करें।

**इसी विनम्र भाव के साथ यह ग्रंथ आपके चरणों में समर्पित है।**

" || यामें अपनी बीतक सब है, श्री देवचन्द्र को मेरे तेरो नाम।
जा दिन जो बीती हम तीनों में, सो सब लिखी तमाम।। (60/85) || "

जागनी लीला की बीतक में तीनों स्वरूपों सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी, श्री प्राणनाथ जी एवं महाराजा छत्रसाल जी के द्वारा होने वाली जागनी लीला का वर्णन किया गया है।

" || सत्रोत्तरे इहाँ रहे, अठारोत्तरे के बरस।
कानजीभाई यहाँ रहेवहीं, बानी सुने सरस।। (18/16) || "

कानजी भाई जूनागढ़ में रहा करते थे और श्रीजी की अलौकिक वाणी का रसपान करते थे। जूनागढ़ में हरिजी व्यास नामक एक विद्वान ब्राह्मण रहते थे। कानजी भाई उन्हीं के यहाँ सेवा का कार्य किया करते थे। एक बार हरिजी व्यास जी मरणावस्था में हो गए।

" || दोय बात की दाझ इनमें से, लिये जात हों मैं।
जाको मैं हाँ कही, सो ना न कही किनने।। (18/20) || "

" || जाको मैं ना कही, सो हाँ न कही किन।
इन दोय बात की दाझ, रह गई मेरे मन।। (18/21) || "

हरिजी व्यास जी के वचनों को सुनकर कान्हजी भाई ने सारी बात श्रीजी को बताई।
श्री जी ने कहा - "अक्षरातीत धाम धनी की कृपा से यह जीवित रहेंगे और इन्हें चर्चा सुनाकर मैं उनके सारे संशयों को मिटा दूँगा।"
श्रीजी से आश्वासन पाकर कान्हजी भाई सच्चे दिल से हरिजी व्यास जी की सेवा करने लगे। उनकी सेवा से रीझकर हरिजी व्यास जी ने कानजी भाई से कुछ माँगने को कहा।
कानजी भाई ने कहा - "व्यास जी मैं आपसे एक वस्तु माँगता हूँ कि मेरे परिचित एक महात्मा जी हैं। आप उनसे धर्म चर्चा का लाभ दीजिए।"
हरिजी व्यास जी ने उनसे प्रफुल्लित होकर उन्हें शाबाशी दी और कहा - "तुम शीघ्र ही उन महात्मा को चर्चा सुनने के लिए बुलाओ।"
श्री जी ने हरिजी व्यास जी की चर्चा सुनी। फिर श्री जी ने उनसे कुछ प्रश्न भी पूछे। जब श्रीजी अपने पूछे प्रश्नों के उत्तर से सन्तुष्ट न हुये, तो उन्होंने हरिजी व्यास जी को क्षर से परे अक्षरातीत के ज्ञान का वर्णन सुनाया। ब्रह्मज्ञान के झरने में इस अमृतरस को पीकर हरिजी व्यास जी धन्य धन्य हो गए। उन्होंने अपना तन मन श्री जी के चरणों में समर्पित कर दिया।

"जेता अंकूर इनका, तहाँ लों भई सोहबत।
फेर तिनसे जुदे पड़े, आए नवतनपुरी तित।। (18/64)"

विक्रम सम्वत 1719 में श्रीजी जामनगर के सुन्दरसाथ की रक्षा के लिए अतिशीघ्र चलकर नवतनपुरी में बिहारी जी के पास आये और उनसे जामनगर के राजा के मंत्री का कार्य सम्भालने के बारे में बातचीत की। विक्रम सम्वत 1720 में श्रीजी ने जामनगर राज्य के मंत्री के सचिव का पद ग्रहण किया और सब सुन्दरसाथ का कष्ट अपने ऊपर ले लिया।

"इहाँ से फेर गुजरात, गये बजीर संग जाम।
तहाँ से माया छोड़ के, लिया मोमिनों का सिर काम।। (18/68)"

वायदे के अनुसार पूरा कर चुकता नहीं होने के कारण कुतुबखान ने श्रीजी को अहमदाबाद में नजरबन्द कर दिया।
जब यह सूचना कानजी भाई को मिली तो कानजी भाई तेजकुवँरी जी के वस्त्र पहनकर श्रीजी से मिलने पहुँचे। वहाँ स्वयं श्री जी के वस्त्र धारण कर और श्रीजी को तेजकुवँरी जी के वस्त्र पहनाकर कारागार से बाहर निकाल कर स्वयं कारागार में बन्द हो गये।

"बाहें ग्रहीं लई निसरी, में त्रण जुध कीधां फरी फरी।
पछे गत मत मारीं हरीं, लई वस पोताने करी।। रास (1/13)"

माया से श्रीजी के होने वाले तीन युद्ध इस प्रकार है-
1. अरब से लौटने पर सतगुरु धनी श्री देवचंद्र जी के द्वारा प्रणाम स्वीकार न किये जाने पर भी श्रीजी का धैर्य धारण किये रहना।
2. बिहारी जी के द्वारा अत्याचार किये जाने पर भी उनकी खुशी के लिए निर्दोष फूलबाई का परित्याग करना।
3. सेवा करने के प्रयास में हब्शे में जाना।

चौथे युद्ध में कर न चुका पाने के कारण सुन्दरसाथ की सुरक्षा के लिए स्वयं को अहमदाबाद के कारागार का कष्ट झेलना पड़ा, किंतु जीतते जीतते श्रीजी बाजी हार गये।
फाँसी का दिन आने तक कानजी भाई की दाढ़ी काफी बढ़ गई थी।
फाँसी के लिए जैसे ही उन्हें कमरे से बाहर लाया गया, उनकी जोशीली वाणी गूंज उठी - "सत्ता के नशे में पागल बादशाह के नुमाइन्दों! तुम शरीयत की ओट में जिस तरह भोली-भाली गरीब जनता का खून चूस रहे हो, उसकी सजा तुम्हें जरूर भोगनी पड़ेगी।

जब कजा के दिन रब्बुल आलमीन अल् रहीम अल् रहमान अल्लाह तआला सबकी कजा करेंगे, उस समय तुम्हें दोजख की अग्नि में बार-बार जलाया जायेगा। तुम्हारे यह सारे जुल्म सबकी आँखों के सामने रहेंगे। तुम्हें किसी भी कीमत पर माफी नहीं मिलेगी।"
कियामत और कजा की हकीकत को सुनकर काजी, जल्लाद तथा सिपाही ने कानजी भाई को छोड़ दिया।
इसके बाद श्रीजी ने पूर्ण रूप से माया का परित्याग कर विक्रम सम्वत 1722 में दीवबन्दर से सुन्दरसाथ को जगाने हेतु जागनी यात्रा प्रारम्भ की।

**" तब गुजरात से आए द्वींपमें, भाई साथी जयराम के घर ।**
**उठ मिले आनन्द सो, बड़ो सुख पायो देखकर।। (20/3) "**

दीवबन्दर में सुन्दरसाथ जयराम जी रहा करते थे। श्रीजी को देखकर वे आनन्द में गदगद हो गये और बोले - "कहो मिहिरराज! कैसे हो? यहां किस कारण आना हुआ?"
श्री जी ने कहा - "मैं तो तुम्हारे लिए आया हूँ और मुझे यहाँ धाम धनी श्री राज जी ने ही भेजा है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि तुम माया को छोड़कर अपने निज घर को याद करो।"
श्रीजी ने जयराम भाई को खण्डनी की बहुत सी बातें सुनाई। श्रीजी ने कहा - "तुम्हारी वृद्धावस्था आ गई है, फिर भी धन के लोभ में दिन-रात बर्तन बनाकर बेचने के धन्धे में लगे हुए हो। आज दिन तक क्या किसी को दुनिया के सुखों से तृप्ति मिली है? तुम्हारे दिल में तो ज्ञान-चर्चा और परमधाम के ज्ञान के प्रति कोई लगन ही नहीं है।"

श्री प्राणनाथ जी के इन वचनों को सुनकर जयराम भाई की आँखों से आँसू ढुलकने लगे। वह स्पष्ट शब्दों में कहने लगे - "हे श्री जी! मुझे बारम्बार धिक्कार है। मैं माया में उलझ कर अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत तथा परमधाम को भूल गया था। मैं तो इस संसार में डूबा पड़ा था। यह तो धाम धनी की हमारे ऊपर इतनी बड़ी कृपा है कि उन्होंने आपको हमारे पास भेज दिया।"

**" इन भाँत की चरचा भई, सब मिला घर का साथ।**
**सब आये चरनों लगे, जो धनीयें पकड़े हाथ।। (20/27) "**

जब से दोनों के बीच चर्चा प्रारम्भ हुई थी, तभी से घर के सभी सदस्य एकत्रित होने शुरू हो गये थे। सभी ने आकर श्री जी के चरणों में प्रणाम किया और अपने को धन्य धन्य माना।

"सम्वत सत्रह सै बाइसे, दीव पधारे श्री राज।
ढोए बरस तहाँ रहे, सब पूरे मनोरथ काज।। (21/15)"

श्री प्राणनाथ जी की अलौकिक चर्चा से श्रोताओं की भीड़ बढ़ने लगी। लगभग 60 नए व्यक्तियों ने तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया। यहाँ पर चर्चा करते हुए 2 वर्ष हो गये थे। श्री प्राणनाथ जी जब भी चलने की इच्छा करते, सुन्दरसाथ बहुत भावुक हो उठता था।

"इन उपाय के वास्ते, आये दीप मारी आरबन।
आई श्री बाई जी बन्ध में, तब चले छुड़ावने तिन।। (22/23)"

तेजकुवँरी जी भी अरबों के बन्धन में आ गई थीं। कार्य-कारण से यह श्री जी के लिए साधन बन गया, वहाँ से बाहर निकलने के लिए, ताकि तेजकुवँरी जी को बन्धन से छुड़ाया जा सके।

"नवी पोरबन्दर पाठन, सब ठौरों देखा फेर।
काहू ना हुआ मौयसर, ऐसी मोहजल की उठी लहर।। (22/24)"

"इहाँ सेती आये कच्छ, थावर दिया साथ।
मंडई मिने आये के, साथ के पकड़े हाथ।। (22/26)"

श्री प्राणनाथ जी दीपबन्दर से चलकर पोरबन्दर, पाटन, कच्छ होते हुए मण्डई आए। वहाँ प्रागमल, कुँवरबाई आदि बहुत से सुन्दरसाथ थे। माया में फँसे हुए उन सुन्दरसाथ को जाग्रत करने के लिए श्रीजी ने चर्चा में खण्डनी के शब्दों का भी प्रयोग किया। श्रीजी ने कहा - "चर्चा - चितवनी छोड़ने के कारण ही आप सभी माया में भटक रहे हैं। यह माया आज तक किसी की भी नहीं हुई है। आप सभी अपने परमधाम को भूलकर माया के झूठे सुखों में फँसे पड़े हैं। इस बात का विचार कीजिए कि आप यहाँ किस कार्य के लिए आए हुए हैं?"

"उहाँ एक दिन रहके, किये जीवते सब।
चरचा कर समझाए के, कपाइये आये तब।। (22/34)"

वहाँ से चलकर कपाइए में हरिवंश राय के यहाँ पहुँचे। लौकिक रीति से बड़े भाई होने पर भी उनको खण्डनी के शब्दों से समझाया। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर जाग्रति की राह पर अपने कदम बढ़ाए।

"तहाँ से आये भोजनगर, आये घर वृन्दावन।
मिलाप किया तिनसों, हुआ खुसाल मगन।। (22/38)"

वहाँ से श्रीजी भोजनगर आये, जहाँ हरिदास जी के पुत्र वृन्दावन जी रहते थे। वैसे तो हरिदास जी का पूरा परिवार ही तारतम्य ज्ञान ग्रहण कर चुका था, किन्तु अभी आत्म-जागृति नहीं हो पायी थी। श्री जी का दर्शन करते ही वृन्दावन जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने श्री जी का यथायोग्य सत्कार किया। श्री प्राणनाथ जी ने वहाँ भी चर्चा प्रारम्भ की। माया में प्रियतम अक्षरातीत तथा परमधाम को भूल जाने के कारण सुन्दरसाथ से जो अपराध हो रहा था, उसके सम्बन्ध में सावचेत किया। सभी को श्रीजी की चर्चा अमृत के समान मीठी लगी और सबने अपने मन की मलिनता भी दूर कर ली।

"दिन दो एक रहके, फेर नलिये पहुँचे।
तहाँ सेती चलके, आये ठट्ठे नाथे के।। (22/44)"

"श्रीजी आये ठट्ठे में, रहे दिन दस-बार।
फेर लाठी बन्दर आये, हुए इत हुसियार।। (23/2)"

"विस्वनाथ भट्ट मिले, आये देवे के दुकान।
उन आदर बड़ो कियो, थी ऊपर की पहिचान।। (23/3)"

किन्तु, यह क्या? समुद्र में अचानक तूफान उठ खड़ा हुआ, जो सत्रह दिनों तक बना रहा। हवा की दिशा उल्टी हो जाने से जहाज पुनः ठट्ठानगर वापस आ गया। ठट्ठानगर में नाथा जोशी से पुनः भेंट हुई। बन्धन भाई, जिन्दादास तथा उनकी पत्नी ठाकुरी बाई भी मिलीं। श्रीजी की अमृतमयी वाणी गूँज उठी। धर्म जिज्ञासुओं की भीड़ बढ़ने लगी।

"सुने साध चिन्तामणि, रहे कबीर के धरम।
कह्या कीजे दीदार तिनका, देखें चरचा उनके करम।। (23/11)"

श्री प्राणनाथ जी चिन्तामणि जी से मिलने स्वयं चले। साथ में कुछ सुन्दरसाथ भी थे। श्रीजी का दर्शन करके चिन्तामणि बहुत प्रसन्न हुए और स्नेह में भरकर बातें करने लगे। चिन्तामणि जी ने पूछा - "आप कहाँ से आए हैं? यदि आपके पास अधिक ज्ञान है, तो मुझे सुनाइए या मुझसे सुनिये। यदि आपकी इच्छा होगी तो मैं आपको चतुर्भुज स्वरूप विष्णु भगवान, आदिनारायण या ज्योति स्वरूप का भी दर्शन करा सकता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं आपको दस अनहदों की ध्वनि भी सुनवा सकता हूँ।"

श्री जी ने कहा - "मैं तो आपसे ज्ञान लेने आया हूँ। आप हमें वह अलौकिक ज्ञान देने का कष्ट करें, जिससे हमारा हृदय धन्य-धन्य हो जाये।" चिन्तामणि जी ने कहा - "वैसे तो कबीर जी का ज्ञान बहुत ऊँचा है, किन्तु कमाल का ज्ञान उनसे भी ऊँचा है, क्योंकि कबीर जी परमात्मा के आधे भक्त हैं और कमाल जी पूरे भक्त हैं।"

श्री जी ने कहा - "चिन्तामणि जी! इस तरह की बात आपके मुख से शोभा नहीं देती। आप कबीर जी की गादी पर बैठकर भी कबीर जी के स्वरूप को नहीं पहचानते, यह बहुत बड़ा आश्चर्य है। सच तो यह है कि कबीर जी अक्षर ब्रह्म का ज्ञान रखते हैं, लेकिन माया का तन होने के कारण उन्हें माया का आधा भक्त कहा गया है तथा कमाल ब्रह्मज्ञान से रहित होने के कारण माया के पूरे भक्त हैं।"

तब श्रीजी ने कबीर जी की एक रचना सुनाई और उसका रहस्य भी समझाया।

**एक पलक ते गंग जो निकसी, हो गयी चहुं दिस पानी।**
**उहि पानी दो परवत ढांपे, दरिया लहर समानी।।**

**उड़ मख्खी तरवर चढ़ बैठी, बोलत अमृत बानी।**
**वह मखी के मखा नाहीं, बिन पानी गरभानी।।**

**तिन गरभें गुन तीनों जाये, वह तो पुरूष अकेला।**
**कहे कबीर या पद को बूझे, सो सतगुरू मैं चेला।।**

चिन्तामणि जी से चर्चा करके श्रीजी अपने निवास चले गए। वे अपने शिष्यों से कहने लगे - "मेरे गुरुदेव ने कहा था कि कबीर जी के इस शब्द (पद) का जो अर्थ बताएगा, वह कोई अलौकिक ब्रह्मस्वरूप व्यक्ति होगा। भविष्य में वे तुम्हें अवश्य मिलेंगे। ऐसा लगता है कि आज उनकी भविष्यवाणी सत्य हो गई।"

**महामति कहें ऐ साथ जी, ए ठट्ठे का मजकूर।**
**सम्वत सत्रह सै चौबीसें, कहूँ आगे और जहूर।। (23/28)**

चिन्तामणि जी श्री जी को खोजते-खोजते कल्लू मिश्र के यहाँ पहुँचे। और वहां से नाथा जोशी के घर आए। श्रीजी के मुखारविन्द से ब्रह्मज्ञान की अविरल धारा बह रही थी। उसमें डूबकर चिन्तामणि जी बेसुध हो गये। कहाँ अब तक तो वे क्षर जगत की सिद्धियों में ही घूम रहे थे, कहाँ अब परमधाम के सुखों की रसानुभूति करने वाले ब्रह्मज्ञान के सरोवर में स्वच्छन्द क्रीड़ा कर रहे थे।

चिन्तामणि तीन दिनों तक धर्म-चर्चा के श्रवण में डूबे रहे। इसके पश्चात् उन्होंने अपने सेवकों सहित समर्पण कर दिया।

**"खण्डनी भली भाँत सों, देखत साथ सबन।**
**तब चिन्तामनि छाने कह्या, सरम राखियो बीच मोमिन।। (24/8)"**

**"एकान्त मोसों कहो, जानो तैसी खण्डनी।**
**पर मेरे सेवकों में सरम, राखो जान अपनी।। (24/9)"**

श्री जी ने कहा - "भला, मैं तुम्हारी गरिमा की रक्षा क्यों नहीं करूँगा? मैं इस तरह से कहूँगा की या तो केवल मैं समझूँगा या तुम। किसी तीसरे को उस समय कुछ भी समझ में नहीं आयेगा।"

**"ए सब गये अपने घरों, राजें रात में किये कीर्तन।**
**सुनो रे सत के बनजारे, ए सुकन ग्रहो मोमिन।। (24/11)"**

रात्रि में एक किरंतन उतरा, जिसकी व्याख्या प्रातःकाल की चर्चा में श्री जी ने की। इन शब्दों ने चिन्तामणि के ऊपर जादू की तरह काम किया। वे अचानक खड़े हो गये और भावुकता मिश्रित जोश भरे शब्दों में कहने लगे - "हे श्रीजी! आपके ज्ञान की लाठी से मैं अपने काले कुत्ते (अहंकार) के सिर पर मारूँगा।"

**"अब मारों काले कुत्ते को, लाठी सिर ऊपर।**
**सेवकों आगे तब कह्या, मैं खाली कछु न खबर।। (24/13)"**

पुनः अपने शिष्यों की ओर देखकर श्री जी की ओर संकेत करते हुए बोले - "ये श्रीजी तो साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हैं। मेरे पास कुछ भी अखण्ड का धन नहीं है। मैं तो अब इनके चरणों में पूर्णरूपेण समर्पित हो ही चुका हूँ। अपने आत्म-कल्याण के लिए तुम सब भी इनके चरण पकड़ लो।"
तब श्री प्राणनाथ जी ने मुक्त कण्ठ से चिन्तामणि जी की प्रशंसा की - "शाबाश! चिन्तामणि! तुमने अपनी मैं-खुदी तथा झूठी प्रतिष्ठा के बन्धनों को तोड़ डाला है। अपने शिष्यों के सामने अपनी कमजोरी को स्वीकार करना ब्रह्मसृष्टि के सिवाय अन्य किसी के लिए सम्भव नहीं है।"

चिन्तामणि जी समस्त शिष्यों सहित पूर्ण रूप से श्री प्राणनाथ जी के प्रति समर्पित हो गये। श्री जी ने सभी को स्पष्ट रूप से कह दिया कि अपनी आत्म-जाग्रति के लिए इन चार प्रतिज्ञाओं का पालन करना अनिवार्य है –

**"एक हराम कह्या मांस को, दूसरा हराम सराब।**
**तीसरी औरत बिरानी तजे, सो पावे हैयाती आब।। (24/16)"**

**"चोरी झूठ बोलना, इनका छोड़ाया उदक।**
**अब हम कबहूँ ना करें, हम पाया बेसक हक।। (24/17)"**

जैसे-जैसे श्री प्राणनाथ जी के मुखारविन्द से होने वाली चर्चा बढ़ती गई, वैसे-वैसे सुन्दरसाथ की संख्या में भी वृद्धि होती गयी।

चतुर दास एक ब्राह्मण थे, जो नित्य-प्रति श्री जी को दूध पहुँचाने की सेवा किया करते थे। जब वह दूध देने आते थे, तो वहाँ व्रज-रास की चर्चा चल रही होती थी। चतुरदास आश्चर्यचकित होकर उस चर्चा का श्रवण करते थे।
चतुरदास जी ने लक्ष्मण दास जी को भी सारी चर्चा सुनाई, तो लक्ष्मण दास जी ने पूछा - "यह अलौकिक ज्ञान तुमने कहाँ पाया? मैं तो यह सुनकर आश्चर्य में डूबा जा रहा हूँ।"
चतुरदास ने कहा - "अपने शहर में कोई दिव्य महापुरूष आये हुए हैं। उनके द्वारा ही अखण्ड व्रज, रास एवं परमधाम की चर्चा चलती रहती है।"

लक्ष्मण दास जी ने कहा - "मुझे भी तुम उनके चरणों में ले चलो, ताकि मैं भी उनकी कृपा की छत्रछाया पा सकूँ।"

चतुरदास जी ने कहा - "मैं उनकी स्वीकृति लिये बिना आपको उनके पास नहीं ले चल सकूँगा।"
चतुरदास ने श्री प्राणनाथ जी के चरणों में आकर प्रार्थना की - "हे धनी! सेठ लक्ष्मण दास इस नगर के प्रतिष्ठित सेठ हैं और आपके दीदार के प्यासे हैं।"

श्री जी बोले - "उन्हें शीघ्र बुलाकर ले आओ।"
चतुरदास श्री जी के आदेशानुसार लक्ष्मण सेठ को अपने साथ लेकर आए। श्री प्राणनाथ जी का दर्शन करते ही लक्ष्मण दास जी को बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। उनके मन की सारी उदासी मिट गयी। चर्चा सुनने के लिए सेठ लक्ष्मण दास दो चार बार आते रहे।

अचानक अपने बाग में टहलते समय जिन्दा दास से भेंट हो गयी। दोनों में वार्ता प्रारम्भ हो गयी।

> **और सुध कछु ना रहीं, वहीं आवे याद।**
> **दृष्ट फिरी उतथें, अपनीं जो बुनियाद।। (25/14)**

श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान होते ही सेठ श्री लक्ष्मण दास जी की स्थिति बदल गयी। उन्हें गीता-भागवत आदि धर्मग्रंथो के गुह्य भेद स्पष्ट हो गये। उन्हें अपने शरीर और संसार का जरा भी भान न रहा।

> **मास दस यहां रहे, हुआ चलने का दिन।**
> **मौसम भई मसकत की, विदा हुये साथ मोमिन।। (25/26)**

> **फेर ठट्ठे से लाठीं बन्दर, नाव ऊपर चढ़े।**
> **तहां से पहुंचे मसकत, सरत थीं वायदे।। (25/30)**

श्रीजी विक्रम सम्वत 1725 में मस्कत बन्दर पहुँचे। श्री जी जैसे ही मस्कत बन्दर पहुँचे, उनकी भेंट महावजी भाई से हुई। महावजी भाई की दुकान बन्दरगाह के पास ही थी। श्री जी के परिवार से इनका लौकिक नाता था। इस सम्बन्ध से उन्होंने श्री जी का बहुत आदर-सम्मान किया। महावजी भाई ने श्री प्राणनाथ जी को अपने मकान के पास ही सुन्दर स्थान में ठहराया और श्रद्धा भाव से सेवा करने लगे।

> **विस्वनाथ संग था, श्रीं बाईजीं कीं दई खबर।**
> **रूपा राधा संग थीं, धाए के पहुँचीं घर।। (26/4)**

जैसे-जैसे चर्चा का दौर शुरू हुआ, लोगों की संख्या बढ़ती गई। वहाँ पर महावजी भाई सहित बहुत से लोगों ने तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया।

> **इत दोय चार कीर्तन, नये किये बीतक।**
> **तूं दुनीं को क्या पुकारे, देख तरफ हक।। (26/17)**

> **रे हो दुनियां बांवरी, खोवत जनम गमार।**
> **दुनियाँ को तूं कहा पुकारे, ए आपनो करे आहार।। (26/18)**

> **तूं भूल ना महामत, संभार अपना आप।**
> **सब स्याने अपने काम में लगे, तोहे विरह धाम का ताप।। (26/19)**

एक दिन चर्चा के समय श्री जी ने महावजी भाई की थोड़ी सी खण्डनी कर दी। उनसे यह सहन नहीं हुआ और मन ही मन उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब वह श्री प्राणनाथ जी की चर्चा सुनने नहीं जाएंगे। अगले दिन चर्चा के समय वह नहीं आए। काम के बहाने दुकान पर चले गये।

" || जब सोया रात को, अपनी दुकान मों।
रातें मारा तमाचा राज ने, हुई दहसत जोर इनको।। (26/25) || "

" || क्यों रीस करी इन को, क्यों न दिये तुम कान।
तूं जा फेर उतहीं, कर देख पहिचान।। (26/26) || "

प्रातः तड़के ही महावजी भाई श्रीजी के कमरे के दरवाजे पर आकर बैठ गये। वे श्री प्राणनाथ जी के चरण पड़कर फूट-फूटकर रोने लगे, साथ ही साथ अपनी व्यथा भी शब्दों में प्रकट करने लगे।
महावजी भाई ने कहा - "हे धाम धनी! मैं आपको पहचान नहीं पाया। अपनी खण्डनी सुनकर मैं बुरा मान गया था। मुझे क्षमा कर दीजिए।"
अब पूर्ण श्रद्धा और समर्पण के साथ महावजी भाई चर्चा सुनने लगे। अब उनको दिन-रात श्रीजी की सेवा करने और चर्चा सुनने के अतिरिक्त कोई काम ही नहीं था।

" || इन भाँत अट्ठाइसे सालमें, रहे मसकत में।
जात आप अपनी, सबों छुड़ाई अरबों से।। (26/46) || "

अब्बासी बन्दर में रहने वाले भैरव सेठ को जब मालूम हुआ कि सभी लोग तो छूट गये, केवल लोहाणा वंश के क्षत्रिय लोग ही अभी बन्धन में हैं, तो पुण्य और प्रतिष्ठा की चाह में उन्होंने उनको छुड़ाने का निश्चय किया। अपने सेवकों को भेजकर उन्होंने सत्तर हजार अरब मुद्रा जमा करवाए और सबको छुड़ा लिया।

" || भई मुलाकात भैरों से, श्री जी साहिबजी सों जब।
अपने घरों ले गया, खिजमत करने लगा तब।। (27/3) || "

अब्बासी बन्दर में भैरव सेठ के मकान में श्रीजी की चर्चा प्रारम्भ हो गयी। चर्चा सुनने के लिए भैरव सबसे आगे बैठे। व्रज और अखण्ड रास की चर्चा सुनकर उन्हें बहुत आनन्द हुआ।

अब्बासी बन्दर में तेज बाई नामक एक वृद्धा रहती थी। वह अपने परिवार सहित श्री जी के दर्शन करने आई। वह वाणी-चर्चा तथा कीर्तन सुनकर इतनी मग्न हो गई कि उन्हें सांसारिक कार्यों की चिन्ता ही नहीं रहती थी। उनके साथ वहाँ की बहुत सी बहनों ने तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया। वे हमेशा चर्चा में इतनी मग्न रहने लगीं कि घर में उनका जरा भी मन नहीं लगता था।

श्रीजी ने भैरव सेठ को कहा - "प्रिय भैरव! तुमने सुन्दरसाथ को डाकुओं के बन्धन से छुड़ाया। मुझे अपने यहाँ लाकर सच्ची भावना से सेवा करते हो तथा चर्चा भी सुनने आते हो, फिर भी तुम्हारी आत्मा क्यों नहीं जाग्रत होती?"
भैरव सेठ ने कहा - "हे धाम धनी! यह तो आपकी मेरे ऊपर अपार कृपा है।"
श्री जी ने कहा - "मेरे आग्रह से तुम केवल एक माह के लिए पाँच चीजों का त्याग कर दो -
1. तम्बाकू का सेवन
2. माँस-मछली का भोजन
3. शराब और प्रत्येक प्रकार का नशा
4. परस्त्री गमन
5. चोरी
यदि एक माह के अन्दर तुम्हें पूर्ण ब्रह्म अक्षरातीत का अनुभव न हो जाए, तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा तथा तुम माया में मग्न हो जाना।"
भैरव सेठ ने कहा - "यदि इतनी सरलता से मेरी आत्मा जाग्रत हो जाए तथा प्रियतम परब्रह्म का भी दर्शन हो जाए, तो फिर और क्या चाहिए? आपकी आज्ञा का मैं अवश्य ही पालन करूँगा।" भैरव सेठ ने उसी क्षण अपने आगे रखे हुक्के को तोड़ दिया तथा श्रीजी के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं अवश्य ही महीने भर पूर्ण रूप से संयम का पालन करूँगा।
अपने मन को संयम की रस्सी से बाँधकर भैरव सेठ चर्चा सुनने लगे। चर्चा के तीसरे दिन जब श्रीजी वर्णन कर रहे थे कि कालमाया और योगमाया से परे परमधाम है तो भैरव सेठ खड़े हो गये और बोले - "हे धाम धनी! आपकी कृपा से मैंने पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द का प्रत्यक्ष दर्शन कर लिया। मैं अब जीवन में कभी भी माँस, शराब, तम्बाकू, परस्त्री गमन आदि का पाप नहीं करूँगा।"
अब्बासी बन्दर में चर्चा के साथ-साथ चितवनि (ध्यान) का भी कार्यक्रम चलता था। इस प्रकार वहाँ बहुत से सुन्दरसाथ की जाग्रति हुई।

" जब इत मास दोय तीन भये, रजा मांगी जब।
हम जायें उन देसमें, उन रोय बातें करी तब।। (27/67) "

अक्षरातीत श्री राज जी की प्रेरणा से अब्बासी बन्दर में नये अधिकारी का आगमन हुआ, जो गैर-मुस्लिमों के लिए बहुत ही क्रूर हृदय वाला था। भैरव ठक्कर को विवश होकर स्वयं श्रीजी से यह कहना पड़ा - "हे धाम धनी! नगर में अब जो अधिकारी आ रहा है वह हिन्दुओं के प्रति निर्दयी है। हमारे जीवित रहते यदि उसने आपका थोड़ा भी बुरा कर दिया तो हमें धिक्कार है। इस दृष्टि से अब आपका यहाँ से चले जाना ही अच्छा है।"

**" तब रजा दई राज को, नाव को बैठ गये बसरे के।**
**तापर चढ़ाये साथको, उत आय पहुँचे ए।। (27/76) "**

श्रीजी अब्बासी बन्दर से कोगबन्दर आये। वहाँ से नाव पर चढ़कर लाठीबन्दर पहुंचे।

**" तहाँ चार दिन रह के, आये नगर ठट्ठे।**
**नाथे जोसी ने सुनीं, दौड़ा लेने को आगे।। (28/2) "**

सब सुन्दरसाथ श्री जी का आगमन सुनकर आह्लादित हो उठा। सबने अपने विरह की पीड़ा शान्त की। श्रीजी का दीदार करके सबके नेत्र तृप्त हो गये। नाथा जोशी के साथ अनेक सुन्दरसाथ श्री जी की अगवानी करने आए और प्रेम पूर्वक ले गए। जिंदादास, ठाकुरी बाई के घर पर श्रीजी ठहरे।

**" सम्बत सत्रह सै अठावीसे, मास बैसाख का होय।**
**पधारे ठठे मिने, तब साथ रजा न देवे कोय।। (28/11) "**

धीरे-धीरे ठट्ठानगर के बहुत से लोग दर्शन के लिए आने लगे। पास के मटहरी से भी काफी सुन्दरसाथ आने लगे और उनकी आत्मा जाग्रत हुई।

यहाँ पर श्री जी ने श्री बिहारी जी को पत्र लिखा। पत्र में मस्कत, अब्बासी, ठट्ठानगर आदि सब जगह के घटनाक्रमों का विवरण था। पत्र में यह भी लिखा कि मैं कच्छ में आ रहा हूँ। मेरा निवेदन है कि आप वहाँ आइये, ताकि मैं आपसे मिल सकूँ।

**" इन समें लछमन पुर में, जाय साथ काढ़्या एह।**
**तहां जो चरचा भई, लिखीं खबर पातीं में तेह।। (28/34) "**

**" श्री जी साहिब जी चले ठट्ठे से, नलिये आये पहुंचे।**
**धारे ने यह बात सुनीं हतीं, आय पहुंचा धाय के।। (29/1) "**

नलिये में श्रीजी और बिहारी जी की मुलाकात हुई और कुछ बातें भी हुई। श्री प्राणनाथ जी स्थल मार्ग से होते हुए कच्छ के रण में आए। वहाँ से विरक्त भेष में धोराजी पहुँचे।

"|| **प्रेम जीं थावर सुनीं, गाड़ीं ले दौड़े ये।**
**आये मिल मारग में, साथ को चढ़ाय लिये जे।। (31/3)** ||"

प्रेमजी और थावर भाई अपनी गाड़ी पर सब सुन्दरसाथ सहित श्री प्राणनाथ जी को बिठाकर ले चले। मार्ग रेतीला था। गाड़ी का पहिया रेत में धँस जाता था, फिर गाड़ीवान बैलों को मार लगता था। ऐसी स्थिति में एक कीर्तन उतरा।

"|| **धोरींडा मा मूके तारीं धूसरीं।**
**वाढडीं विस्मीं गाड़ीं भार भरीं, धोरींडा मा मूके तारीं धूसरीं।।** ||"

**धोरींडा आरे मारे रे, हांरे तूंने गोधे घणे रे।**
"|| **तूं ता नाके नथाणों रे, तूं तां बंध बंधाणों गुण आपणे रे।।** ||"
**किरन्तन (130/1)**

वहाँ से सुन्दरसाथ सहित श्री जी घोघा आये। वहाँ तीन दिन रुककर सुहाली होते हुए सूरत आए।

"|| **तहाँ से सुहालीं उतरे, फेर आये सूरत।**
**गये सैयद पुर भगवान के, मोहनदास के रहे तित।। (31/5)** ||"

विक्रम सम्वत 1729 में श्रीजी सूरत पधारे। सूरत में श्री कलश गुजराती सम्पूर्ण हुई। वहाँ मोहनदास के घर के बगल में शिवजी भाई का घर था। वहाँ श्रीजी विराजमान हुये और शिव जी ने शुद्ध हृदय से उनकी सेवा की। शिवजी तथा रामजी दोनों भाई थे, किन्तु उनमें यही अन्तर था कि शिवजी भाई जहाँ धनवान थे, वहीं रामजी भाई बहुत गरीब थे। श्री प्राणनाथ जी ने दोनों को ज्ञान से जाग्रत किया।

"|| **सत्रह महीनें तहाँ रहे, कहों ताकी बीतक।**
**जिन भाँत लीला करी, सो याद करो बुजरक।। (31/7)** ||"

श्री प्राणनाथ जी के मुखारविन्द से होने वाली चर्चा का शोर सारे सूरत में होने लगा। लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। चर्चा का रस लेने के लिए बड़े-बड़े विद्वान भी आने लगे, जिनमें

वेदान्त के विद्वान भीम भाई तथा श्याम भाई प्रमुख थे। लगभग 500 सुन्दरसाथ के साथ चलकर श्रीजी अहमदाबाद (गुजरात) आये।

"गुजरात के बीच में, चार दिन रहे येह।
तहाँ सेतीं कूच करके, सिद्धपुर पहुंचे तेह।। (33/15)"

सिद्धपुर में सब सुन्दरसाथ के साथ श्री प्राणनाथ जी 22 दिन तक ठहरे रहे। वहाँ पर भगवान रेवादास उपाध्याय ने श्रीजी सहित सब सुन्दरसाथ की अत्यन्त प्रेम भाव से सेवा की। सिद्धपुर से चलकर श्रीजी विक्रम सम्वत 1732 में मेड़ता पहुँचे। श्री प्राणनाथ जी सब सुन्दरसाथ सहित एक हवेली में विराजमान थे। इस समय मेड़ता में चारों ओर श्रीजी के अलौकिक ज्ञान की चर्चा हो रही थी।

श्रीजी के मुखारविन्द से चर्चा सुनने के लिए और उनका दर्शन करने के लिए सम्पूर्ण मेड़ता के लोग उमड़े हुए चले आते थे। मेड़ता में आने से पहले तक श्री प्राणनाथ जी का मन कुरआन पक्ष की चर्चा में नहीं था। कलमा सुनते ही उनके अन्दर से कुरान का ज्ञान प्रकट होना प्रारम्भ हुआ।

श्री प्राणनाथ जी चार माह मेड़ता में रहे। श्री प्राणनाथ जी जब मेड़ता से चले तो गोकुल एवं मथुरा होते हुए आगरा आ गये।

"कोई दिन तहाँ रह के, दिल्ली पहुंचे धाए।
कितनाक साथ ठठे का, इत पहुंचा आए।। (34/10)"

वे दिल्ली में विट्ठल गौर की हवेली में छः मास तक रहे।

"इन हवेली में आप, मास छः रहे।
तहाँ से लाल दरवाजे को, ले चला उत के।। (34/30)"

श्री प्राणनाथ जी लाल दरवाजे में एक क्षत्रिय की हवेली में दो माह तक ठहरे। इस हवेली में एकान्त में वेद-वेदान्त की चर्चा होती थी। उस चर्चा में एक सूफी फकीर भी आया करता था।

"ऐसा विचार करके दिल्ली से चले जब।
साहजहानपुर बोड़िया मिने, आये पहुंचे तब।। (34/56)"

यहाँ पर श्री प्राणनाथ जी एक माह तक रहे। उसके पश्चात हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया।

" || **विक्रमाजीत के राज से, बरस सत्रह सै पैंतीस।<br>तब जिद्द हुई फिरकान सों, बुद्ध ईस्वरों के ईस।। (35/31)** || "

हरिद्वार में 12 वर्ष के पश्चात लगने वाले महाकुम्भ के मेले में वैष्णव के चारों सम्प्रदाय, तथा षट् दर्शनों के आचार्यों, तथा दस नाम सन्यासियों के साथ श्री प्राणनाथ जी का शास्त्रार्थ हुआ।

उस समय विक्रम सम्वत 1735 का समय चल रहा था। धर्मग्रन्थों में लिखी भविष्यवाणी के अनुसार रात्रि के समय धूम्रकेतु का तारा भी दिखाई पड़ा तथा वर्ष में एक माह कम हुआ अर्थात् 11 मास का वह वर्ष हुआ। फिर भी संसार के लोग अज्ञानता की नींद में सोते रहे, अर्थात उन्हें पता ही नहीं चला कि विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप का प्रकटन हो चुका है।

" || **साके विजयाभिनन्द के, पुकारत सब कलाम।<br>ताको सबै पढ़त हैं, पर भूलीं खलक तमाम।। (37/87)** || "

हरिद्वार में श्री प्राणनाथ जी ने हिन्दू जगत के सभी आचार्यों पर शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की। मूल स्वरूप ने पहले ही अपने हृदय में ले लिया था कि हरिद्वार में विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप को प्रकट कर तारतम ज्ञान का फैलाव होना है। इसी कारण हरिद्वार में इस तरह की लीला हुई। इसके पश्चात श्री प्राणनाथ जी ने कुंभ मेले का सारा दृश्य देखकर पुन: दिल्ली चलने का विचार किया।

" || **दाउद पाण्डे की हवेली में, साथ को छोड़े जब ।<br>हरद्वार से होए के, आए के मिले तब।। (37/89)** || "

" || **फेर श्री राज आए दिल्ली, आए मिले सब साथ।<br>मास चार इत भये, फेर साथ के पकड़े हाथ।। (38/1)** || "

श्री प्राणनाथ जी ने सुन्दरसाथ की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए बच्चों, स्त्रियों तथा वृद्धों को किसी सुरक्षित स्थान में रखने का निर्णय किया। इन्हें लेकर श्री प्राणनाथ जी अनूपशहर आए तथा एक हवेली में सबको ठहरा दिया गया। तत्पश्चात श्रीजी पुनः दिल्ली वापस चले गए।

"फेर इहां से चले, आए लाल दरवाजे में।
साथ सबे मिल के, परियान किया तिन से।। (38/9)"

इस समय जागनी कार्य में इस बात की बहुत बड़ी उलझन बनी हुई थी कि शरातोरा के बन्धनों में बँधा हुआ बादशाह अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप की पहचान कैसे करेगा? विक्रम सम्वत 1736 आषाढ़ के महीने में श्रीजी अनूपशहर के लिए रवाना हुए।

मार्ग में श्री जी को बार-बार पतले दस्त होने लगे। शरीर की स्थिति बहुत बिगड़ने लगी। माणिक भाई ने औषधि दी, किन्तु कोई विशेष सुधार नहीं हुआ।

"इन समय सरीर को, बड़ी भई कसोट।
डर के लालबाई रोई, ले धनीं की ओट।। (39/24)"

श्री प्राणनाथ जी ने लालबाई को सान्त्वना देते हुए कहा - "अभी इस तन से लीला होनी बाकी है। तुम जरा भी चिन्ता ना करो।"

"उस बखत जबराईलें, बड़ा जो किया जोर।
उतरे कलाम कादर से, करो खेल में सोर।। (39/26)"

विक्रम सम्वत 1736 अनूपशहर में श्री कलश हिन्दुस्तानी और प्रकाश हिन्दुस्तानी अवतरित हुई। दो-चार दिन के पश्चात श्री प्राणनाथ जी अनूपशहर से दिल्ली आ गये। यह स्पष्ट हो गया कि शेख सुलेमान औरंगजेब से मिलवाना ही नहीं चाहता था।

"लाल दरवाजा छोड़ के, आए सराए रोहिलाखान।
ए कलाम फारसी में करें, तब होवे पहिचान।। (39/52)"

सराय रोहिल्ला खान की हवेली में इस विषय पर गहन मन्त्रणा की गई कि औरंगज़ेब तक पैगाम पहुँचने के लिए अब क्या करना चाहिए? सराय रोहिल्ला खान में सुन्दरसाथ सहित श्रीजी चार माह रहे। इसके पश्चात चाँदनी चौक में आकर दुलीचन्द की हवेली में ठहरे। उन्हें कुरआन की चर्चा करते हुए देखकर आसपास के हिन्दुओं ने शोर मचाना शुरू कर दिया। सबने यह कहना शुरू कर दिया कि ये लोग वेशभूषा से तो हिन्दू हैं, किन्तु कुरआन की चर्चा करते हैं। इनको अपनी हवेली में नहीं ठहरने देना चाहिए, नहीं तो हम सबका धर्मभ्रष्ट हो जाएगा। तब सब सुन्दरसाथ ने उस हवेली को छोड़ दिया और एक एकान्त स्थान पर बैठकर पाँच पत्र तैयार किए।

इन पत्रों में कुरआन-हदीसों की साक्षी देकर कयामत के सातों निशानों के प्रकट होने की बात की गयी थी। श्रीजी ने पूछा - "पैगाम पहुँचाने के लिए अब तुम क्या करना चाहते हो?" सुन्दरसाथ में से 12 सदस्य ऐसे चुने गये, जो सच्चे दिल से समर्पित थे। उन सभी ने औरंगज़ेब के दरबार में जाने के लिए मुसलमान फकीरों वाली वेशभूषा भी पहन ली। वे आपस में खूब हँस-हँसकर बातें कर रहे थे।

सुन्दरसाथ ने श्रीजी से प्रार्थना की - "हे धाम धनी! अब आप किसी एकान्त स्थान में निवास करें। आपकी कृपा से हम औरंगजेब को पैगाम देने में अवश्य ही सफल होंगे।" दुलीचन्द की हवेली से श्रीजी कामा पहाड़ी पर आ गये।

"कामा पहाड़ी से होए, आए बीच आमेर।
दिन एक दोए रह के, पीछे आए सांगानेर।। (49/1)"

विक्रम सम्वत 1736 में ही श्री जी कामा पहाड़ी से उदयपुर को प्रस्थान करते हैं। शेख बदल और मुकुन्द दास जब सांगानेर के रास्ते में जा रहे थे, तो कुछ लुटेरे मवासियों की उन पर नजर पड़ गई। उन्होंने उनको लूटना चाहा। किसी तरह भाग कर वे दोनों पुर (पुरमण्डल) नामक एक गांव में आए। वहाँ एक दुकान में एक खाट के ऊपर बैठे हुए श्री प्राणनाथ जी को उन दोनों ने देखा। शेख बदल ने श्रीजी को पहचान लिया तथा आकर चरणों में प्रणाम किया। मुकुन्द दास जी भी वहाँ आ गए।

अब यहाँ से सब सुन्दरसाथ को लेकर श्री जी उदयपुर के लिए प्रस्थान करते हैं। सब सुन्दरसाथ सहित श्रीजी उदयपुर में लाधू के भाई के यहाँ ठहरे, उन्होंने बहुत आदर भाव के साथ सबका स्वागत किया और अच्छी तरह से सेवा की। फिर उदयपुर में लाधू मसानी ने अपनी हवेली में श्रीजी को ठहराया। वेद-कतेब के एकीकरण की चर्चा का प्रवाह चल पड़ा। आसपास के लोग काफी संख्या में आने लगे। श्री प्राणनाथ जी का साक्षात् दर्शन करके सभी ने अपने को धन्य धन्य माना।

अब उदयपुर में श्री प्राणनाथ जी के मुखारविन्द से ब्रह्मज्ञान की अमृत धारा बह रही थी। उसका रसपान करने वाला यही मानता था कि आज वह धन्य धन्य हो गया है। उस समय पाताल से लेकर परमधाम तक का पट तैयार हो रहा था। श्री प्राणनाथ जी लिखवा रहे थे तथा मुकुन्द दास जी उस कार्य में आगेवान थे। औरंगजेब की सेना ने उदयपुर को चारों ओर से घेर लिया। मुख्य मार्गों पर रोक लगा दी गई ताकि कोई भागने न पावे।

"|| पहने चीरक बस्तर, सब सरगुन दिया डार।
हुए चलने को तैयार, छोड़ा कार वेहेवार।। (50/28) ||"

उदयपुर से रामपुर के बीच में पूरनमल चारण का गाँव था। वहाँ सुन्दरसाथ ने ईंटें बनाकर हवेली खड़ी कर दी। उसमें सभी निवास करने लगे। उनकी बूढ़ी माता सब सुन्दरसाथ की सेवा में तल्लीन थी। श्री प्राणनाथ जी के अलौकिक तेज से वह बहुत प्रभावित हो गई थी। यहाँ राजा के भाई बेरीसाल के मन में पाप आ गया।

"|| इन समें फकीरी का, भेख धरा अनूप।
सोभा छब सरूप की, बारों कोठक रूप।। (51/3) ||"

उस हवेली को छोड़कर श्रीजी सहित सब सुन्दरसाथ मन्दसौर आये। वहाँ हरिप्रसाद के घर पर ठहर गये।

"|| सम्बत् सत्रह सै छत्तीसा, लगा सैंतीसा जब।।
मन्दसोर के बीच में, आए पोहोंचे तब।। (51/2) ||"

उस समय मन्दसौर के चारों ओर शाही सेना ने पड़ाव डाला हुआ था। सुन्दरसाथ वहाँ पर सनन्ध की वाणी का गायन करने लगे, जिसे सुनने के लिए कुछ लोग आने लगे। उस समय श्रीजी के पास रोते-बिलखते कृपाराम जी आए। वे उदयपुर के सुन्दरसाथ की ओर से पत्र लेकर आए थे।

उन्होंने रो-रोकर वहाँ का सारा समाचार श्रीजी को सुनाया कि किस प्रकार औरंगजेब की सेना से प्रताड़ित होकर उदयपुर का सुन्दरसाथ पहाड़ों में छिपकर विलाप कर रहा है। सुंदर साथ का दुःख में रोना सुनकर स्वयं श्री महामति जी को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने मूल मिलावे में ध्यान करके सुन्दरसाथ के कष्टों की निवृत्ति के लिए मूल स्वरूप श्री राज जी से प्रार्थना की।

"|| पांच किरंतन करके, फेर दाखिल किए कलाम।
तबहीं पोहोंची हक को, हुई मेहर ऊपर इसलाम।। (51/30) ||"

मन्दसौर से चलकर श्रीजी के साथ सब सुन्दरसाथ सीतामऊ आए। वहाँ से नोलाई होते हुए अठ्ठाइस दिनों में उज्जैन आए।

“ || भादों सुदी छठ को, रहे धनबाई के घर।
भाई भगवान चौधरी, ईमान ल्याया इन पर।। (52/2) || ”

“ || फेर तेईसमें दिन इहां से, नोलाई आन पोहोंचे।।
एक दिन तहां रह के, पोहोंचे नुनेरे।। (52/15) || ”

वहाँ (नुनेरे) एक दिन रहकर समस्त सुन्दरसाथ के साथ बुढ़ानपुर पहुँच गए। वहां श्रीजी एक दिन रहकर औरंगाबाद के लिए चल पड़े।

“ || तहां से आए औरंगाबाद, भाव सिंह के घर।
तहां की बीतक कहों, जिन भांत इन पर।। (52/17) || ”

श्री जी जैसे ही हवेली में पहुँचे, भाव सिंह ने आकर चरणों में शीश झुकाया। धाम धनी श्री प्राणनाथ जी का दर्शन करके उन्होंने अपने को धन्य धन्य माना। भाव सिंह ने श्रीजी सहित सब सुन्दरसाथ को अपनी हवेली में ठहराया। तथा सच्चे हृदय से सेवा करने लगे। एक बार सुन्दरसाथ नरसैंया के पद गा रहे थे। भाव सिंह उसे सुनकर इतने भाव विह्वल हो गए कि स्वयं को रोक नहीं सके और सारी राजकीय मर्यादाओं को भूल कर सबके सामने नाचने लगे। भाव सिंह के दरबार में चार मुस्लिम अधिकारी थे।

भाव सिंह ने कहा - "यदि वे स्वीकार कर लेंगे कि कुरान और हदीसों के कथनानुसार आप ही आखरूल इमाम मुहम्मद महदी हैं, तो मैं औरंगजेब से लड़ने के लिए तैयार हूं।" तब श्रीजी ने कहा - "अपने उन मुस्लिम अधिकारियों को मेरी चर्चा सुनने के लिए भेजो।"

सबसे पहले चर्चा सुनने अव्वल खान आये। यह वही अव्वल खान है, जिन्होंने उदयपुर में श्री जी की पहचान होने पर अपने शरीर को अपने ही कोड़े से पीटना शुरू कर दिया। आते ही उन्होंने अपने परवरदिगार को पहचान लिया। इसके पश्चात वे जहान मोहम्मद तथा मिहीन खान को बुला लाये। कुछ दिनों की चर्चा सुनते ही मिहीन खान को ईमान आ गया और उन्होंने तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया।
जब भाव सिंह को मालूम हुआ कि उसके दरबार के मुस्लिम अधिकारियों ने यह स्वीकार कर लिया है कि श्री प्राणनाथ जी ही आखरी इमाम मोहम्मद महदी साहिबुज्जमां है, तो वह शरीयत के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार हो गया। किन्तु उसके मन में चमत्कार की इच्छा हो गई। उसने श्रीजी से प्रार्थना की - "हे धाम धनी! मेरा तन, मन और धन आपके चरणों में समर्पित है। मैं औरंगजेब के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार हूँ। मेरी एक ही इच्छा है कि मैं परमधाम का दर्शन कर लूँ।"

श्रीजी ने अभी जरा सी योगमाया की ही झलक दिखाई, तो भाव सिंह का जीव वहाँ के प्रेम, सुख और तेज की झलक को सहन नहीं कर सका। उसकी सुरता वहाँ लगी, तो लगी ही रह गई। शरीर छूट गया।

**"तहां से राह चल के, मिला राह में भीमसेन।**
**तिन को ल्याए बुढ़ान पुर, कहीं बीतक सब ऐन।। (53/141)"**

बुढ़ानपुर से श्रीजी सुन्दरसाथ सहित आकोट आये वहाँ पर चार महीने रहे। आकोट से चलकर श्रीजी कापस्तानी आए।

**"फेर दिन दस पांच रह के, आए एलचपुर पोंहोंचे।**
**तहां एक परसाजी ने, ख़िज़मत करी ए।। (57/46)"**

ऐलचपुर से श्रीजी देवगढ़ आए और वहाँ चार दिन तक रहे। राम टेकरी के राजा ने श्रीजी के सन्देश को बहुत हल्के में लिया। इसलिए वहाँ के लोगों में से किसी ने भी श्रीजी की चर्चा में ज्यादा चिन्तन नहीं किया। कई दिनों की मन्जिल पूरी करने के पश्चात् श्रीजी सहित सब सुन्दरसाथ रामनगर पहुँचे। वहाँ केतकी नदी के किनारे गणेश महन्त का आश्रम था। सुंदर साथ ने भी वहाँ आवास हेतु एक भवन बनाया। जिसमें कुछ दिन बिताए जा सकें। रामनगर में अभी जागनी कार्य की शुरुआत हुई ही थी कि माया ने जोर पकड़ा। मिर्गी की बीमारी फैल गई, जिसमें चिन्तामणि, निर्मलदास, मलूक चन्द आदि बहुत से सुन्दरसाथ ने अपना तन छोड़ दिया। इस घटना से सुन्दरसाथ बहुत दुखी हो गये। श्री जी की कृपा से वहाँ इस मिर्गी की बीमारी का समापन हुआ। विक्रम सम्वत 1738 में श्रीजी रामनगर पहुँचे थे, 1739 में निकले थे। 2 साल रामनगर में रहे।

**"ए बात हरिसिंह सुनी, करने आया दीदार।**
**सुजान साह की सोहोबत, किया सूरत सिंह खबरदार।। (58/1)"**

श्री जी अब रामनगर से चलकर एक बाग में रुके। वहाँ से चलकर श्रीजी गढ़ा आये।

**"आए राज रामनगर, तहां बिराजे बरस दोए।**
**मिले दीवान देवकरण, ईमान ल्याए सोए।। (60/2)"**

दीवान देवकरण ने आकर श्री जी के चरणों में प्रणाम किया। थोड़ी सी चर्चा सुनने के पश्चात उनको यह दृढ़ विश्वास हो गया कि यह ही परब्रह्म स्वरूप श्री विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध है। उन्होंने मन में ले लिया कि मैं अपने चाचा छत्रसाल जी को यह बात बताऊँगा, क्योंकि वे तो 12 वर्षों से इन्हीं की बाट देख रहे हैं। छत्रसाल जी को श्रीजी के आगमन की सूचना देने के लिए देवकरण जी रामनगर से चलकर मऊ आए और महाराजा छत्रसाल जी को सारी बातें बता दी।

"चले अगरिए से, परने पहुंचे आए।
डेरा किया अमराई में, ठौर झंडे की चित्त ल्याए।। (60/11)"

देवकरण जी की श्रीजी से भेंट अगरिए में हुई। उन्होंने अपने परिवार वालों के साथ श्रीजी और सब सुन्दरसाथ की बहुत सेवा की। इसके पहले श्री प्राणनाथ जी ने देश-विदेश के अनेक स्थानों को अपनी चरण धूलि से पवित्र किया। मस्कत, अब्बासी, सूरत, मेड़ता, दिल्ली, हरिद्वार, उदयपुर, मंदसौर आदि में कहीं भी जागनी का ध्वज फहराने की इच्छा नहीं हुई। इस शोभा के लिए उन्होंने एकमात्र पन्ना को ही चुना था।

श्रीजी के साथ चलने वाले सुन्दरसाथ की संख्या लगभग पाँच हजार थी। सभी यहाँ की प्राकृतिक शोभा को निहार ही रहे थे कि अचानक क्षेत्रीय निवासी, जो गोंड कहलाते थे, दौड़ते हुए आये। उनके परेशान होने का कारण यह था कि कहीं उन्होंने किलकिला का जल तो नहीं पी लिया। क्या पानी पीना गुनाह था? नहीं! यह तो उनकी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए स्थानीय निवासियों ने यह सूचित किया कि इस नदी का पानी इतना विषैला है कि पी लेने पर कोई भी नहीं बचेगा।

"तब सब साथ में मिल के, धोये चरण अंगूठा राज ।
डारयो चरणामृत नदी में, पीछे नहायों सकल समाज।। (60/15)"

श्री जी ने छत्रसालजी के पास यह सूचना भेज दी कि हम पन्ना में अमराई घाट में ठहरे हैं। यह सुनकर छत्रसाल जी ने उत्तर भिजवाया कि इस समय शेर अफगन ने आक्रमण कर दिया है, इसलिए मेरा आना सम्भव नहीं हो पा रहा है। यदि आप कृपा करके केवल युवा सुन्दरसाथ के साथ यहाँ पधार कर मुझे दर्शन दे, तो मैं स्वयं को धन्य धन्य समझूँगा।

"मऊ में तिंदुनी दरवाजे, डेरा किया वाहिं।
राजा भेख बदल के, दरसन कियों ताहिं।। (60/19)"

"फेर दूजी बेर भेख बदल के, कर सिकार को साज।
साथ सबों के बीच में, बैठे थे श्री राज।। (60/20)"

सब सुन्दरसाथ के बीच में श्री प्राणनाथ जी विराजमान थे। छत्रसाल जी उनसे कुछ दूर जानबूझकर अनपढ़ की तरह खड़े हो गए और बोले - "बाबा जू! राम राम!"
श्री जी ने भी कहा - "राम-राम! बाबा यहाँ बैठो।"

जिस बिछौने पर सुन्दरसाथ बैठे थे, छत्रसाल जी उस पर दूर किनारे बैठ गए, तब श्रीजी ने कहा - "बाबा! और आगे आओ मेरे पास सामने बैठो।"

यह सुनकर छत्रसाल जी थोड़ा सा आगे आए, फिर श्री जी ने कहा - "और आगे आओ। अब तो तुम मेरे फन्द में फँस गये हो, अब कहाँ भाग कर जाओगे?"

चुनौती के यह शब्द स्वाभिमानी छत्रसाल जी सहन नहीं कर पाये। उन्होंने बेधड़क होकर कहा - "इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई भी नहीं है, जो मुझे फन्दे में डाल सके। हाँ! केवल श्री विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध जी के फन्दे में मैं जरूर हूँ। आज से बारह वर्ष पहले उन्होंने अपनी छाप का जो सिक्का दिया था, वह यह है। मैं उसी दिन से उनकी बाट देख रहा हूँ और उनका गुलाम हूँ।"
तब श्री जी ने अपने बिछौने का एक कोना ऊपर उठा दिया। बिछौने के नीचे मुहरों की बहुतायत थी। छत्रसाल जी ने उनका मिलान अपनी मुहर से किया। दोनों में समरूपता देखकर छत्रसाल जी लज्जित हो गये। फिर प्रत्यक्ष रूप से बाजे-गाजे और सेना के साथ सम्पूर्ण राज परिवार ने धूम-धाम के साथ श्रीजी का स्वागत किया।

"मऊ सेती परना मिने, पहुंचे श्रीजी साहब।
मंझली ने पहिचानिया, सेवा करी तब।। (60/35)"

महाराजा छत्रसाल मऊ से पन्ना जी उस समय आये, जब श्रीजी स्नान करके भोजन के लिए तैयार थे। छत्रसाल जी ने श्रीजी के दोनों चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। श्री प्राणनाथ जी के भोजन कर चुकने के पश्चात् प्रसादी के रूप में महाराजा छत्रसाल जी तथा उनके साथ आये हुए अन्य चार व्यक्तियों - हिम्मत सिंह, पर्वत सिंह, देवकरण तथा रूप सिंह ने भी भोजन ग्रहण किया।

"**सम्बत सत्रह सै चालीसे, पधारे परना में।**
**सेवा श्री जीं महाराजें करी, क्यों कहूं इन जुबां सें।। (60/46)**"

महाराजा छत्रसाल जी ने कई बार अपने महल में श्रीजी की पधरावनी की। एक तरफ सुखपाल में वे कन्धा देते थे, तो दूसरी तरफ महारानी। श्रीजी और बाई जी को उन्होंने परमधाम के युगल स्वरूप के रूप में मानकर हीरे, मोतियों, तथा अन्य वस्त्र-आभूषणों से सजाया और उनकी सेवा की। अपना तन, मन और धन समर्पित करने के बाद भी वह हाथ जोड़कर खड़े रहते थे।

"**आवे साथ परदेस को, और रहे जो इत।**
**तिन सब की सेवा की, मोहे है गरज करों नित।। (60/146)**"

एक बार श्री जी और महाराजा छत्रसाल पन्ना नगर के बाहर एकान्त में धर्म चर्चा कर रहे थे कि अचानक ही शेर अफगन ने दूसरी बार आक्रमण कर दिया। उस समय छत्रसाल जी के सुरक्षाकर्मी बहुत थोड़े से थे। अचानक इस हमले से महाराजा छत्रसाल घबरा गए। उन्होंने श्रीजी से प्रार्थना की - "धाम धनी! यह अफगन खान अपने दुष्टता नहीं छोड़ रहा है। इसका क्या हल है?"

श्री प्राणनाथ जी ने कहा - "आज विजयदशमी का पर्व है। आज के दिन ही रावण मारा गया था। इस आततायी की भी हार निश्चित है।"

तब श्रीजी ने महाराजा छत्रसाल जी की तलवार को अपने हाथों में लेकर उस पर अपनी मेहर की नजर कर दी और उसे देते हुए कहा - "छत्ता! जब तक यह तलवार तुम्हारे पास रहेगी, तब तक कभी भी तुम्हारी हार नहीं होगी। तुम युद्ध में निश्चिंत होकर जाओ।"

महाराजा छत्रसाल उस तलवार को लेकर युद्ध करने गए। उस दोधारी तलवार की चमक ऐसी अलौकिक थी कि हर मुगल सैनिक दूसरे मुगल सैनिक को छत्रसाल के ही रूप में देखने लगा। परिणाम, सारी मुगल सेना आपस में ही लड़ मरी। शाम तक घायल शेर अफगन के लिए भागने के सिवाय कोई भी चारा नहीं था।

जिस प्रकार मोहम्मद साहब ने अली को "जुल्फिकार तलवार" दी थी, उसी प्रकार श्रीजी ने छत्रसाल जी को ऐसी अलौकिक तलवार दी, जिससे संसार में उनसे कोई भी नहीं जीत सका।

श्री जी के आदेश के अनुसार छत्रसाल जी का घोड़ा दिन भर दौड़ता रहा। शाम को वे श्री प्राणनाथ जी के समक्ष उपस्थित हुए। श्री जी ने मुस्कुराते हुए कहा - "छत्ता! तेरा घोड़ा आज जहाँ जहाँ दौड़ कर आया है, वहाँ तक की धरती हीरा उगलती रहेगी। लेकिन यह हीरा तभी तक पूर्ण रूप से निकलेगा, जब तक तुम्हारे वंशज एक अक्षरातीत पर निष्ठा रखेंगे।"

" **सम्बत सत्रह सौ तेतालीसे, असवारी करी जब।**
**हस्तीं पर चढ़ाए के, आगे सेना चलाई तब।। (60/149)** "

कालपी से हाथी की सवारी करके श्रीजी जब सेहुड़ा पहुँचे, तब चित्रकूट के राजा बसन्त सुर्खी ने आकर उनके चरणों में प्रणाम किया।

" **श्री राज चले चित्रकूट को, लिया महाराजे दिल में।**
**सेवा में भंग होत है, कोई इलाज करो इनसें।। (60/163)** "

" **एक बरस तहां रहे, इत खोले अल्ला कलाम।**
**श्री राज रोसनी जाहिर करी, खुल गए सब ठाम।। (60/165)** "

जब श्रीजी चित्रकूट से पन्ना जी आ रहे थे, तब धाम धनी ने बड़ा कयामतनामा के अवतरण की खुशी जो विक्रम सम्वत 1743 में अवतरित हुआ, महाराजा छत्रसाल जी को बताई।

" **फेर मिठू पीरजादे ने, बुरी करी नजर।**
**पांच हजार असवार ले दौड़ा, राह में भई फजर।। (60/168)** "

श्री जी की ब्रह्मवाणी की अमृत धारा पन्ना में प्रवाहित हो रही थी। हजारों सुन्दरसाथ उस अखण्ड रस में डूब कर स्वयं को कृतार्थ मानते थे। उनके लिए संसार के सारे सुख नश्वर थे। महाराजा छत्रसाल जी राज्य-व्यवस्था सम्भालने के साथ-साथ आध्यात्मिक दृष्टि से भी सर्वश्रेष्ठ थे। सभी सुन्दरसाथ श्री प्राणनाथ जी को पूर्ण ब्रह्म का स्वरूप मानते थे। जब श्रीजी चर्चा करते थे, तो सुन्दरसाथ को बाह्य नेत्रों से ही परमधाम में विराजमान परब्रह्म के युगल स्वरूप के दर्शन होने लगते थे। सुन्दरसाथ के आनन्द की कोई सीमा नहीं थी।

विक्रम सम्वत 1748 से विक्रम सम्वत 1751 तक श्रीजी गहन समाधि में बैठ गए। सावन का महीना, कृष्ण पक्ष की तृतीय, श्री महामति जी उस दिन मौन धारण कर समाधिस्थ हो गये। छत्रसाल विरह में डूब कर अपने प्राणवल्लभ प्राणनाथ को पुकारते हैं। लेकिन जब श्रीजी कुछ भी नहीं बोलते तो छत्रसाल जी अपना अन्त करने के लिए ज्योंहि ही अपनी तलवार निकालते हैं, हँसते हुए श्री जी ने छत्रसाल जी का हाथ पकड़ लिया। बोले - "छत्ता! क्या तूने केवल मेरे तन को ही प्राणनाथ समझा। मैं  तो अब गहन समाधि में जा रहा हूँ, लेकिन यह न समझ लेना कि मैं तुमसे अलग हो गया हूँ। मैं पल-पल हर सुन्दरसाथ के पास रहूँगा। देश-विदेश में जहाँ-जहाँ भी सुन्दरसाथ है उनको परमधाम की तरफ ले चलना और ब्रह्माणी की ज्योति को फैलाना तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है।

" इसके पश्चात श्रीजी पुनः समाधिस्थ हो गए और उनके तन को गुम्मट जी मन्दिर में झूले पर पधराया गया। यह झूला जमीन की सतह से काफी नीचे था। ऊपर से सतह को ढक दिया गया था तथा ऊपर भी श्री मुखवाणी को श्री प्राणनाथ जी का ज्ञानमय स्वरूप मानकर पधराया गया और सेवा-पूजा प्रारम्भ की गयी।

जिनके हृदय में अटूट श्रद्धा है, विरह की रस धारा है, प्रेम की प्यास है, उनके लिए श्री प्राणनाथ जी आज भी वैसे ही है जैसे 300 वर्ष पहले थे। आत्मा का प्रियतम न तो कभी अलग था, न है और न कभी होगा। हाँ! जिनके अंत:चक्षु बन्द हैं, श्रद्धा और आस्था है नहीं, उन शुष्क हृदय वाले जीवों के लिए अवश्य ही उनका धाम गमन (देह त्याग) हो गया है।

" **महामत कहें सैयन को, ए सेवा के कहे साथ।**
**इहां तेहीं खड़े रहे, जाके धनिएं पकड़े हाथ।। (73/25)** "

क्यों कहूं चरन की बुजरकियां, इत नाहीं ठौर बोलन।
ए पकड़ सरूप पूरा देत हैं, मेरे जीव के एही जीवन।।

।। प्रणाम जी ।।

हमारे साथ जुड़ने के लिए धन्यवाद!

किसी भी प्रश्न के लिए कृपया श्री प्राणनाथ जी वाणी यूट्यूब चैनल पर अवश्य जाएँ।

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ की दिव्य छाया में प्रकाशित

श्री प्राणनाथ जी वाणी

॥ प्रेम खोल देवे सब द्वार ॥


ShriPrannathJiVani   Shri Prannath Ji Vani   Shri Prannath Ji Vani

shriprannathjivani@gmail.com   www.shriprannathjivani.com